ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 182-186**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

काव्य में प्रकृति–चित्रण तथा गोपाल सिंह नेपाली की गीतिकविता

डॉ0 मनोज कुमार
विभागाध्यक्ष– स्नातकोत्तर हिंदी–विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लक्सर – हरिद्वार, (उत्तराखंड) भारत

Received-13.08.2026, Revised-22.08.2026, Accepted-30.08.2026, **E-mail:manojkumar09101967@gmail.com**

सारांशः *आदिकवि वाल्मीकि के यहां जब कविता की पहली पंक्ति फूटी थी तो वह प्रकृति में हो रहे अन्याय के विरुद्ध आक्रोश और गहरे स्तर पर करुणा से उपजी हुई पंक्ति थीः*

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।"

यह करुणा मनुष्य की प्रकृति के प्रति एक गहरी राग–दृष्टि का अद्भुत प्रमाण है। इसी प्रकार कालिदास के 'कुमारसंभव' में हिमालय का जिस प्रकार विशद् वर्णन है और 'मेघदूत' में जिस तरह मेघ कविता के केंद्र में है, उससे प्राचीन संस्कृत कवियों में प्रकृति के प्रति गहरे रागात्मक भाव का पता चलता है।

कविता में प्रकृति अन्य सभी साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक सघनता से विद्यमान रहती है, क्योंकि कविता जीवन की संश्लिष्ट स्थितियों की सघनतम अभिव्यक्ति है।

प्रकृति में नाद अंतर्निहित रहता है। झरनों की कल–कल ध्वनियां, पक्षियों का कलरव, झुरमुट और पत्तियों की सरसराहट, बादलों का गर्जन, बिजली की कौंध आदि से जो ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, उनमें एक ऐसा नाद–सौंदर्य होता है, जिनमें लयात्मकता और संगीतात्मकता सहज रूप में मिलती हैं। ये सभी तत्त्व काव्य में विभिन्न रूपों में आते हैं। संगीत तत्त्व के सर्जक वाद्य–यंत्रों का निर्माण प्रकृति की वनस्पतियों से ही हुआ है। इसलिए प्रकृति मनुष्य के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ गई और कविता प्रथमतः और अंततः मनुष्य की रक्षा और उसके विकास के लिए रची जाती है। उसमें राग–तत्त्व की केंद्रीय भूमिका होती है यहां हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कविता की परिभाषा प्रस्तुत करना चाहेंगे कि कविता शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंधों की रक्षा और निर्वाह का साधन है।

कुंजीभूत शब्द– स्वर्णकाल, मनोविनोद,सामाजिक वसांस्कृतिक जीवन, मनोरंजन, आमोद–प्रमोद, जीवन–संग्राम, मनोवृत्ति, समृद्धिशालिता।

प्रस्तावना– मनुष्य अपने भावों और क्रिया–व्यापारों को कई बार प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त कर पाने में असमर्थ होता है– विशेषकर प्रेम के प्रसंग में। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक मान्यताएं और रूढ़ियां विशेष रूप से बाधक बनी रहीं। इसलिए प्रकृति के माध्यम से मनुष्य अपनी प्रेम संवेदना को व्यक्त करता रहा है। प्रेम के अतिरिक्त अन्य दूसरे क्षेत्रों में भी जब सीधे तौर पर कुछ कह पाना कठिन होता है तो संकेत और प्रतीकों के माध्यम से ही बात कही जाती है। ये संकेत और प्रतीक प्रायः प्रकृति के बीच से ही आते हैं। कविता इसीलिए बताने की बजाय संकेत करती है यह संकेत जितना संश्लिष्ट होगा, कविता उतनी ही उत्कृष्ट होगी। प्राचीन संस्कृत काव्यों से लेकर आधुनिक छायावादी कविताओं और उससे भी आगे, समकालीन हिंदी कविता में, जब बताने की प्रक्रिया में विश्वास नहीं रह, जाता तो कवी अपनी बात संकेतो और प्रतीकों के माध्यम से ही करता है। इस स्तर पर प्रकृति मानवीय भावों को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम रही है। कालिदास के 'मेघदूत' से लेकर प्रसाद के 'आंसू' तक प्रकृति के माध्यम से काव्य–नायक अपनी बात संप्रेषित करता रहा है। रीतिकाल में प्रकृति प्रेम के उद्दीपन के रूप में बहुत प्रभावशाली ढंग से उपस्थित रही है। इससे पूर्व भक्तिकाव्य में प्रकृति प्रायः उपमानों और रूपकों की योजना में ही आती रही। सूर के पदों में यमुना, करील, कुंज, मधुवन, मानव कृष्ण के जीवन के साथ तदाकार हो गए हैं। कृष्ण की जीवन–लीला इन तत्त्वों को छोड़कर कदाचित् समग्र रूप में प्रस्तुत ही नहीं की जा सकती। तुलसी के यहां प्रकृति राम के सौंदर्य–वर्णन, वर्षाऋतु–वर्णन, शरदऋतु–वर्णन, पुष्पवाटिका–प्रसंग आदि स्थलों पर मिलती है।

छायावादोत्तर कवियों में मानवीय भावों की संवाहिका के रूप में प्रकृति की उपस्थिति दिखाई देती है। इससे पूर्व महादेवी वर्मा के यहां दीपशिखा, बदली, वर्षा, रजनी आदि उनकी स्वानुभूति को व्यक्त व्यक्त करने का माध्यम बन गए हैं। "मैं नीर भरी दुःख की बदली" जैसे गीत देखे जा सकते हैं। नरेंद्र शर्मा का संग्रह ही 'पलाश के वन' मानवीय संवेदना को प्रकृति के उपादानों से प्रस्तुत करने का विशिष्ट प्रयास है। इसी दौर में गोपाल सिंह नेपाली के गीत प्रकृति के विशद चित्र लेकर उपस्थित होते हैं। इनमें मानवीय भावों, आकांक्षाओं और आवेगों को कहीं तो प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है, तो कहीं स्वयं प्रकृति को संबोधित किया गया है। मन को संबोधित निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकृति के विभिन्न पक्षों को व्यक्तित्व की विशेषता के रूप में चित्रित किया गया हैः

"मैं सरस सोमरस घोल–घोल,
तारों–सा खिड़की खोल–खोल
पीपल पल्लव–सा डोल–डोल,
विहगों की बोली बोल–बोल
करता रहता हूं अभिनंदन,
तुम कब समझोगे मेरे मन।"[1]

इसी प्रकार नेपाली के गीतों में झरना मोर पपीहा चटक कोयल समीर सुमन आदि के माध्यम से प्रेम और जीवन की अन्य स्थितियों को व्यक्त किया गया है एक उदाहरण दृष्टतव्य हैः

"चातक, मोर, पपीहा, कोयल,
अपने जीवन के दिन चार
करते हैं आकर दुनिया में,
यही प्रेम का ही व्यापार
किंतु, देव, कब समझोगे, है,
यही स्वर्ग, जीवन, संसार
यही पुण्य है एक जगत का,
उतरेंगे इससे ही पार।"[2]

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

आधुनिक कवियों में प्रकृति का सहकार प्रेम के चित्रण में छायावाद में ही अधिक सघन रूप में दिखाई देता है। मधुमास, मेघ, तम, निर्झर, यामिनी, निशा, बदली, संध्या, उषा, क्षितिज आदि प्रेम के साक्षी के रूप में प्रेम के प्रारंभ से ही उपस्थित रहते हैं। ये प्रेम के एक अनिवार्य हिस्से के रूप में दिखाई देते हैं, न कि किन्हीं स्थितियों में प्रेम को उद्दिप्त करने के लिए। इनके बीच ही प्रेम विकास पाता है। महादेवी के "मेरे प्रियतम को भाता है तम के पर्दे में आना", निराला के "अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा, श्याम तृण पर बैठने को, निरुपमा", पंत के "उठा तब लहरों से कर कौन, न जाने मुझे बुलाता मौन" तथा प्रसाद के:

"शशि मुख पर घूंघट डाले,
आंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूलि में,
कौतूहल से तुम आए।"[3]

आदि अंशों में प्रकृति और प्रेम एकमेक हो गए हैं। प्रकृति के बिना प्रेम को व्यंजन यहां संभव नहीं है।

छायावादोत्तर गीतकारों में रोमनी और भावुकतापूर्ण प्रेम की अभिव्यक्ति प्रकृति के मनोहर बिंबो के माध्यम से हुई है। हरिवंशराय 'बच्चन', नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के ऐंद्रिय और मांसल प्रेम को अभिव्यक्त करने वाले गीत निशा, कलश, सुमन, कालिका, मधु आदि के द्वारा व्यक्त हुए हैं।

इसी दौर में गोपाल सिंह नेपाली के गीत प्रेम की अद्भुत व्यंजना में प्रकृति के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। अपने सहज सरल शिल्प–विधान और जन सामान्य की शब्दावली में लिखे हुए गीतों में नेपाली ने प्रेम की जो संवेदना भर दी है वह हिंदी के कम ही कवियों में मिलती है। पंछी, मधु, बेला, कोकिल, बादल, तरु, संध्या आदि के बीच विकसित प्रेम इतना सहज और स्वाभाविक है कि पाठकों को अपना जैसे लगने लगता है:

"आई है मधु–बेला पंछी, चंचु खोल तो दे रे!
कब से प्राण हमारे आतुर, मधुर बोल तो दे रे!
इस मधु–ऋतु में तरु के भीतर कहां छिपा है पंछी,
आकर इन कनों में प्यारे सुधा घोल तो दे रे!"[4]

इसी प्रकार प्रकृति के उपादानों के बीच कवि प्रेम को परिभाषित करता है। नायिका का सौंदर्य प्रकृति के तत्त्वों से ही उपमित करता है, पर वैसी ही तत्परता और बेचैनी प्रकृति तत्त्वों के प्रति है, जैसी कहीं–कहीं पंत के यहां दिखाई देती है। यहां थोड़ा अंतर यह है कि जहां पंत ने नायिका की तुलना में प्रकृति का वर्णन किया था वहीं गोपाल सिंह 'नेपाली' नायिका जैसी प्रकृति की चाह करते हैं। इससे दो बातें ध्वनित होती हैं। एक तो यह की प्रकृति–निरपेक्ष नायिका कवि के लिए काम्य नहीं है और दूसरी बात यह की प्रकृति कदाचित् नायिका की तुलना में कम आकर्षक और सुंदर है। इसीलिए नायिका जैसी सुंदर और सजीव प्रकृति के लिए कवि की आकांक्षा है। 'मोती' के माध्यम से कवि ने इस भाव को प्रस्तुत किया है:

"ला दो मोल कहीं से मोती फिर तुम,
मुझको भी वैसे मोती
इन आंखों की गहराई में,
रहते हैं जैसे मोती।"[5]

कवि के लिए वसंत, निर्झर, चांदनी, मधुमास, उषा, ही प्रिय नहीं है, अपितु उसे पतझड़ में भी प्रेम की आकांक्षा है:

"माधुऋतु में जैसे तुम आये, पतझर में भी आना,
पीले झरते हुए पात का गाना सुनते जाना।"[6]

नेपाली को पतझड़ का भी चांद आकर्षित करता है। जब वसंत के फूल झड़ चुके हों और धूल उड़ रही हो, ऐसे में भी चांद का लुभावना और आकर्षक लगना सचमुच बड़ी बात है:

"झर चुके थे वसंत के फूल,
उड़ रही थी वन–वन में धूल
धूल से भौंरे लिपटे हुए,
नग्न डालों से चिमटे हुए
खोजते थे निज भूला गान।"[7]

नेपाली के यहां प्रकृति से ही प्रेम प्रभावित नहीं होता, बल्कि प्रेम की तीव्रता से प्रकृति भी प्रभावित हो जाती है:

"कूकती कोयलआधी रात,
सिहर उठते वसंत के प्राण।"[8]

इस प्रकार नेपाली की गीतिकविता में प्रेम के संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों में प्रकृति की सक्रिय उपस्थित दिखाई देती है। प्रकृति के माध्यम से ही प्रेम पूर्णता पाता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि कविता में मात्र अर्थ ग्रहण कराने से काम नहीं चलता, उसमें बिम्ब ग्रहण करना जरूरी होता है।[9] बिम्ब जब भी होगा व्यक्ति का होगा, विशिष्ट का होगा। बिम्ब ग्रहण की प्रक्रिया में चित्रण सबसे आवश्यक है। चित्रण की प्रक्रिया में विभाव आते हैं। इन विभावों के माध्यम से ही चित्रण होता है। किसी घटना और स्थिति को व्यक्त करने का सबसे अच्छा माध्यम है– बिम्ब। यदि प्रेम का, हास्य का, करुणा का, शोक का कोई घटनाक्रम प्रस्तुत करना हो, उदाहरण देना हो तो वह इस प्रकार के किसी बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। विभाव के अंतर्गत आलंबन और आश्रय यह दो पक्ष होते हैं।[10] शास्त्रीय शब्दावली में आलंबन और आश्रय के माध्यम से प्राकृतिक दृश्य–विधान किया जाता है। शुक्ल जी इसे 'गोचर प्रत्यक्ष' कहते हैं। आलंबन के रूप में प्रकृति का चित्रण बहुत कम हुआ है। इसी प्रकार आश्रय के अंतर्गत भी प्रकृति प्राचीन कव्यों में चित्रित नहीं दिखती, अपितु इन दोनों पक्षों के अतिरिक्त उद्दीपन विभाव के चित्र सर्वत्र मिलते हैं। रामचंद्र शुक्ल ने आलंबन को भाव का विषय बताते हुए उसे विस्तृत फलक में देखा है। आलंबन का विषय मनुष्य और प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों कीट, पतंग, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि कोई भी हो सकता है, किंतु आश्रय के अंतर्गत भाव का अनुभव करने वाला केवल मनुष्य ही हो सकता है।[11] प्रायः कवियों का अभीष्ट प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण करना नहीं रहा है। वे नायक– नायिका के मनोभावों के अनुरूप चित्र खींचते रहे हैं, किंतु यदि केवल प्रकृति के चित्र खींचे जाएं तो उसकी भी सार्थकता बनती है। संस्कृत के प्राचीन कवियों वाल्मीकि, कालिदास आदि में प्रकृति का ऐसा स्वतंत्र

चित्रण मिलता है। यहां केवल प्रकृति ही चित्रित है, पर इन कवियों के यहां ऐसे भी चित्र हैं जो प्रकृति के बीच मनुष्य की विभिन्न छवियां प्रस्तुत करते हैं। ऐसे चित्र अपेक्षाकृत अधिक सफल और सार्थक हैं। शुक्ल जी ने माना है कि हिंदी में रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत कविता और संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रेरणा ग्रहण की है। यह वह दौर था जब संस्कृत कविता अपने अवसान पर थी। यही कारण है कि रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत के अनुकरण पर आचार्यत्व को प्राप्त करने और लक्षण– ग्रंथों के निर्माण में अपनी सार्थकता समझी। उन्होंने संस्कृत के प्राचीन कवियों को अपना आदर्श नहीं बनाया। इसीलिए उनके यहां प्रकृति केवल उद्दीपन के रूप में आती है।

गोपाल सिंह नेपाली के गीतों में प्रेम स्वतंत्र और स्वायत्त रूप में नहीं आता। उनके यहां प्रेम जीवन के जटिल और कठोर पक्षों के बीच फूटता है, विकसित होता है। कवि में प्रेम के अतिरिक्त और भी कुछ सोचने की चिंता है। जीवन के तिक्त अनुभवों के बीच प्रेम वास्तव में बड़ी कठिन परीक्षा है। कवि यथार्थ से मुख नहीं मोड़ता और वह यथार्थ के सच्चे स्वरूप का बोध नायिका को भी करना चाहता है। 'दो बूंद' शीर्षक कविता की ये पंक्तियां इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं:

"तुम इस दुनिया को क्या जानो,
हो रहीं अभी आंखें गीली
ज़िंदगी यहां की क्या समझो,
तितलियां उड़ा नीली–पीली,
देखी ना कभी होगी तुमने,
संकरी पगडंडी पथरीली!
इसलिए दिखाई देती है,
दो बूंद तुम्हारी आंखों में।"[12]

इसी भाव भूमि पर निर्मित एक और चित्र देखिए:

"प्रेम की यह कामना, पत्थर, तनिक तो बोल दे!
शैल बन, पाषाण बन, पर आज बंधन खोल दे!
प्रेम की यह भावना रे, उड़ न पंछी, डाल से!
मोह है कितना मधुर जग–जाल से, जंजाल से।"[13]

प्रकृति के विविध रंग और अनेक आयाम हैं। प्रकृति का विस्तार सृष्टि के कोने–कोने तक है। मानव जीवन ही नहीं अपितु यह चराचर जगत् प्रकृति के संस्पर्श से अछूता नहीं है। प्रकृति के विविध पक्ष मनुष्य के लिए शुभ और सुखकारी हैं, तो उसके इस विस्तृत फलक में कुछ ऐसा है जो मनुष्य के लिए त्रासदी और विनाशकारी भी है। वसंत, पावस, हेमंत और शरद ऋतुओं में यदि मानवीय चेतना के तार झंकृत करने की क्षमता है, तो झंझावात, प्रलय, भूकंप, ज्वालामुखी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, गर्मी का भीषण प्रकोप आदि मनुष्य के लिए अशुभकारी हैं। प्रकृति का सांगोपांग चित्रण करने की कविता में लंबी परंपरा रही है। संस्कृत कवियों से लेकर समकालीन हिंदी कवियों ने प्रकृति के इन दोनों ही रूपों को अपनी कविता में स्थान दिया है। जीवन पर पड़ने वाले प्रकृति के इन प्रभावों को कवियों ने मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। प्रकृति के प्रकोप से संस्कृतियां नष्ट हो जाती हैं। 'कामायनी' का आरंभ ही प्रलय–वर्णन से होता है। यह प्रलय प्रकृति के प्रकोप का सबसे भयानक रूप है। इस महाप्रलय में समूची देव सृष्टि नष्ट हो जाती है। उसका वैभव, उसकी गरिमा, उसका अमरत्व व उसकी उन्मत्तता सब कुछ एक झटके के साथ नष्ट–भ्रष्ट हो जाते हैं। एकमात्र प्रतिनिधि जीवित बचते हैं–मनु। इसी प्रकार टी.एस. इलियट की विश्व प्रसिद्ध कविता 'वेस्टलैंड' एक संस्कृति के नष्ट होने की कहानी है।

गोपाल सिंह नेपाली पर छायावादी भावबोध का बहुत गहरा प्रभाव है। ये छायावादी कवियों– पंत और निराला– से गहरे स्तर पर जुड़े हुए थे। इन दोनों कवियों ने इनके संग्रह क्रमशः 'उमंग' तथा 'पंछी' की भूमिकाएं लिखी हैं। नेपाली की संवेदना पर छायावादी भावबोध और बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि के दौर का गहरा रंग है, पर छायावाद की ओर इनका मन अधिक मुड़कर देखता है। पंत के बिंब, प्रतीक इनकी कविताओं में कई बार ज्यों–के–त्यों के और कई बार अपने अलग अर्थ के साथ देखे जा सकते हैं, पर इनकी गीतिकविता के, जैसा कि पहले कहा जा चुका है; तीन मुख्य स्वर हैं– प्रेम, प्रकृति और राष्ट्रीयता। प्रेम और प्रकृति एक दूसरे में घुल मिल गए हैं। राष्ट्रीयता का रंग अलग और साफ है। जब प्रकृति और प्रेम इस कदर एकमेक हो जाए, तो पंत जैसी स्थिति सहज संभाव्य है। इन पर पंत के प्रभाव को इस तरह से भी रेखांकित किया जा सकता है कि इनकी दो प्रसिद्ध कविताओं 'परिवर्तन'और 'नौका– विहार' शीर्षक से इन्होंने भी कविताएं लिखीं। यदि पंत के परिवर्तन में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का वर्णन है और परिवर्तन का आह्वान है, तो इनके यहां भी परिवर्तन 'युगांतर' शीर्षक कविता में नए की आकांक्षा और पुराने के विध्वंस से प्रेरित है। वह सभी प्रकार के बंधनों से त्वरित मुक्ति चाहता है:

"अरे युगांतर, आ जल्दी अब खोल, खोल मेरा बंधन" में जहां बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा है, वहीं उसमें आमूल परिवर्तन की बेचैनी है:

"आ जा, ला दे कण–कण में अब फिर से ऐसा परिवर्तन
मरता जहां आज यह जीवन वहां करे यौवन नर्तन।"[14]

इसी प्रकार नेपाली के यहां प्रकृति के अनेक ऊबड़–खाबड़ रास्ते भी मिलते हैं। वे उन स्थितियों को भी सहज और स्वाभाविक मानते हैं जो जीवन के लिए प्रायः असहज और अप्रीतिकर लगती हैं। प्रेम हो या जीवन, तरुणाई हो या जवानी किसी में कवि विरोधी स्थितियों की कल्पना से घबड़ाता नहीं, बल्कि उनको सहज और स्वाभाविक मानकर उनके बीच ही रहना और जीना चाहता है।प्रेम, यौवन और मस्ती के एक कवि द्वारा तरुणाई को सांपिन कहना अपने आप में विलक्षण है:

"रुदन–प्रेम, यह भरी जवानी,
तरुणों की ऐसी तरुणाई!
कवि के इस अज्ञात–वास में,
सांपिन बनकर डंसने आई !"[15]

गोपाल सिंह नेपाली के यहां प्रकृति अपने व्यापकता के साथ प्रेम वर्णन में समाहित है। प्रकृति के सभी पक्ष इनकी कविताओं में स्थान पाते हैं। नरम घास, रागिनी, पंछी, उमंग की बात करने वाला कवि सांपिन रुद्र–मूर्ति, भट्ठी, रेती, ज्वाला, स्फुलिंग, चिंगारी की भी बात करता है। कंकड़, पत्थर, गर्जन, झंझावात के बीच प्रेम की कल्पना संभवतः नेपाली जैसे कुछ कवियों के यहां ही मिलती है।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

प्रकृति का विस्तार सृष्टि पर्यंत है। इस अर्थ में पावस, शरद, ग्रीष्म, बादल, चांदनी, नदी, सरिता, पर्वत, टीले, वृक्ष, झरना ये सब तो प्रकृति के सार्वभौमिक तत्त्व हैं, किंतु प्रकृति के कुछ स्थानीय रंग भी होते हैं, जो उस क्षेत्र विशेष की स्थितियां, उसके परिवेश, उसकी भाषा, उसके रहन–सहन, संस्कृति, भौगोलिक वशिष्ट्य, जलवायु आदि के द्वारा अपना विशिष्ट रंग लिए हुए होते हैं। जहां प्रकृति के सार्वभौमिक तत्त्वों के वर्णन में देश काल की सीमा का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, वहीं स्थानीय रंग लिए प्रकृति के तत्त्व उस स्थानीयता बोध को जानने समझने वाले पाठकों–श्रोताओं के लिए ही रुचिकर लगेंगे। यदि नदी मात्र या पर्वत मात्र पर लिखी कोई कविता हो जिसमें उसका नामोल्लेख न हो और उसकी विशेषताएं बहुत जीवंतता के साथ विशिष्टीकृत रूप में न उभारी गई हो, अपितु वे किसी नदी या किसी पर्वत का आभास देती हो, तो यह देश काल की सीमा से अलग हर पाठक के लिए आस्वादकारी होगी। लेकिन यदि गंगा जमुना या अमेजॉन और नील नदियों पर लिखी कविताएं हों और उसमें निजी विशेषताएं, निजी रंगत अपने पूरे सांस्कृतिक संदर्भ के साथ व्यक्त हुई हों, तो इस पर देश और काल के अनुसार पाठकों के आस्वादन में अंतर जरूर आएगा। नील और अमेज़न नदी से संबंधित कविताएं क्रमशः मिश्र और अमेरिका के पाठकों को साधारणीकृत करेंगी, ठीक उसी प्रकार गंगा और यमुना तथा हिमालय पर लिखी कविताएं भारतीय पाठकों के लिए विशेष रूप से आस्वादकारी होंगी। इस अर्थ में प्रकृति की स्थानीयता का महत्व बढ़ जाता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूर के प्रकृति–चित्रण के संदर्भ में कहा है कि उनके यहां बाह्य प्रकृति बहुत परिमित है।[16] उन्होंने एक क्षोभ के साथ यह रेखांकित किया है कि ब्रज के गोचरण प्रदेश को छोड़कर उनकी कविता में किसी और अंचल का वर्णन नहीं मिलता, किंतु इसे हम सूर के काव्य की एक ख़ास और निजी पहचान के रूप में रेखांकित करना चाहेंगे। यदि ब्रज प्रदेश को सूर की कविता से हटा दिया जाए तो उसका अर्थ बहुत बिगड़ जाएगा। प्रकृति की स्थानीय रंगत हिंदी कविता में पहचानने की अनेक कवियों ने कोशिश की है। श्रीधर पाठक, सुमित्रानंदन पंत, निराला तथा नए कवियों में श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि के यहां एक विशिष्ट प्रकार से प्रकृति की उपस्थिति देखी जा सकती है। गोपाल सिंह नेपाली के यहां भी अनेक कविताओं में प्रकृति की स्थानीय विशेषताएं अपनी जीवंतता में दिखाई देती हैं। श्रीधर पाठक के यहां कश्मीर, पंत के यहां अल्मोड़ा, कौसानी; निराला के यहां इलाहाबाद,लखनऊ; श्रीकांत वर्मा के यहां मगध, हस्तिनापुर; केदारनाथ सिंह के यहां बनारस, मांझी; सर्वेश्वर के यहां कुंआनो नदी (बस्ती), प्रयाग, दिल्ली आदि की स्थानीय पहचान देखी जा सकती है।

गोपाल सिंह नेपाली ने मंसूरी, देहरादून, काशी, मालव, नेपाल, वैशाली, मिथिला आदि को उनकी पूरी स्थानीय विशेषताओं, सांस्कृतिक संदर्भों के साथ प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर; रचनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। 'मंसूरी की तलहटी' का एक चित्र देखें:

"तलहटी यही मंसूरी की है जहां वनों में सघन साल
हैं जहां चाय के भारे बाग़, हैं जहां धान के हरे बाल
लगते सुंदर कांटेवाले भी यहां करौंदा के निकुंज
तलहटी वहीं मंसूरी की देहरादून जिससे निहाल।"[17]

इसमें मंसूरी की तलहटी मूर्तिमान हो उठती है। इसी प्रकार देहरादून को भी इन्होंने अपनी कविता में प्रत्यक्ष किया है। देहरादून से कवि का विशेष लगाव रहा है। इन्होंने लंबे समय तक वहां प्रवास किया है। देहरादून की वनस्पतियां कवि के रचना संसार में घर कर गई हैं। इस प्रभाव को कवि ने इस रूप में स्वीकार किया है– "यह हरी–हरी दूब की ही महिमा है कि आज मेरे हाथ में बंदूक के बदले लेखनी है।18 इस देहरादून का एक चित्र देखिए:

"सामने खड़ा ऊंचा पहाड़
है गर्मी में भी यहां जाड़
फैली जंगल में घनी झाड़
हैं बेर नदी की आड़–आड़
पड़ता लाने में बड़ा फेर
देहरादून के मधुर बेर।"[19]

निष्कर्ष– इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता की शुरुआत से प्रकृति का काव्य से एक अनिवार्य संबंध रहा है। प्रकृति के बीच कविता विकसित हुई है। कभी तो वह उद्दीपन के रूप में और कभी स्वयं स्वतंत्र सत्ता के रूप में आलंबन बनकर कविता में उपस्थित हुई। प्रकृति के व्यापक और बहुआयामी रूप, प्रकृति की स्थानीय रंगत, प्रेम और प्रकृति के संबंध आदि कविता में अनेक स्तरों पर व्यक्त हुए हैं। गीत में सरसता और भावुकता के लिए अधिक अवकाश रहता है। अतः ऋतु–वर्णन तथा बारहमासा के निमित्त मात्र से लेकर स्वतंत्र रूप से प्रकृति प्रधान कविताएं रची गईं। उषा, संध्या, रजनी, तारे, चांद आदि कविता में मनुष्य को कभी संवेदित करते रहे, तो कभी जाग्रत। गोपाल सिंह नेपाली की गीतिकविता इन सभी विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। परंपरा के परिप्रेक्ष्य में रखकर उनके महत्व और उनके स्वरूप को पहचानने की कोशिश इस आलेख में की गई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपालसिंह नेपाली– उमंग; ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, संस्करण 1970; पृ0–31.
2. वहीं; पृ0–34.
3. छायावाद के प्रतिनिधि कीव– संपादकः विजयपाल सिंह; विश्वविद्यालय प्राप्त, वाराणसी, संस्करण 1985; पृ0–49.
4. गोपाल सिंह नेपाली– पंछी; गंगा पुस्तकमाल कार्यालय, लखनऊ, संस्करण 1965; पृ0–39.
5. वही– उमंग; ऋषभ चरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, संस्करण 1970; पृ0–52.
6. गोपालसिंह नेपाली– पञ्चमी; कविवासर, बेतिया, चंपारण, बिहार, 1942; पृ0–47.
7. वहीं; पृ0–49.
8. वहीं; पृ0–52.
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल– चिन्तामणि– पहला भाग; इंडियन प्रेस पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण 1981; पृ0–100.

10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल– चिन्तामणि– द्वितीय भाग 8; संपादकः विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण संवत 2041 वि0; पृ0–2.
11. वहीं; पृ0–2.
12. गोपाल सिंह नेपाली– नीलिमा; वैशाली निकुंज, मुजफ्फरपुर, 1939; पृ0–37.
13. गोपालसिंह नेपाली– रागिनी; राष्ट्रीय प्रकाशन मण्डल, मछुआ टोली, पटना, 1962; पृ0–59.
14. उमंग– गोपालसिंह नेपाली; ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, संस्करण 1970; पृ0–20.
15. गोपालसिंह नेपाली– रागिनी; राष्ट्रीय प्रकाशन मण्डल, मछुआ टोली, पटना, 1962; पृ0–44.
16. आचार्य रामचंद्र शुक्ल– चिन्तामणि– द्वितीय भाग; संपादकः विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण संवत 2041 वि0; पृ0–21.
17. गोपालसिंह नेपाली– उमंग; ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, संस्करण 1970; पृ0–74.
18. गोपालसिंह नेपाली– रागिनी; राष्ट्रीय प्रकाशन मण्डल, मछुआ टोली, पटना, 1962; पृ0–2.
19. गोपालसिंह नेपाली– उमंग; ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, संस्करण 1970; पृ0–75.

*****